

स्त्री मुक्ति का आह्वाहन करती 'खांटी घरेलू औरत'

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

'खांटी घरेलू औरत' ममता कालिया द्वारा रचित ऐसा काव्य-संग्रह है जिसमें घरेलू स्त्री को मद्देनजर रखकर कवितायें लिखी गई हैं। इसमें एक ओर जहाँ नितांत घरेलू स्त्री के जीवन, उसकी अनुभूतियों, संवेदनाओं, आशाओं-आकांक्षाओं के साथ ही उसके हताश होते मन, उसकी निराशाओं और पीड़ा के दर्शन किये जा सकते हैं वहाँ दूसरी ओर समाज में स्त्री जाति की स्थिति के प्रति उसके मन में उठते असंतोष, खीझ और विद्रोह के स्वर भी लक्षित होते हैं। इसकी अधिकांश कवितायें घरेलू स्त्री में आती चेतना का आह्वाहन करती हैं।

"मैं अनुपस्थित होना चाहती हूँ

वहाँ से ,

जहाँ शत-प्रतिशत उपस्थिति भी

कम मानी जाती है।"

ममता कालिया जी द्वारा रचित उपर्युक्त चार पंक्तियाँ 'गागर में सागर' के समान आज की खांटी घरेलू औरत के जीवन, विचार, स्वत्व के प्रति उसकी सजगता, उसमें व्याप्त होते असंतोष, उसमें आती प्रगतिशील चेतना सब अपने भीतर समेटे हुए हैं। वस्तुतः ममता कालिया जी की कवितायें स्त्री की उस समझ से विकसित होती हैं जो बिना किसी आक्रान्तता के अपने लक्ष्य को न केवल बुनती- गुनती है बल्कि उसे पा लेने का सामर्थ्य भी रखती है। वह जितनी बढ़िया कथाकार हैं उतनी ही बेहतरीन कवयित्री भी हैं। 'खांटी घरेलू औरत' ममता जी का एक बहुत ही उम्दा काव्य-संग्रह है। इसमें उन्होंने स्त्री

—अस्मिता एवं उनकी समस्याओं से जुड़े विविध प्रश्नों को अपनी कविताओं के माध्यम से वाणी प्रदान की है। स्त्री का जीवन अपनी सम्पूर्ण संवेदना, अनुभूति, द्वंद्व एवं संघर्ष परायणता के साथ इन कविताओं में उजागर हुआ है। इनकी कविताओं में प्रयुक्त संवाद, विवाद, स्वगत कथन सब मिलकर स्त्री की सचेत संवेदना को उजागर करते हैं तथा उसकी प्रगतिशील चेतना के वाहक बनकर उसकी उपस्थिति इस समाज में दर्ज कराते हैं।

जैसा कि इस संग्रह के शीर्षक 'खांटी घरेलू औरत' से ही पता चलता है कि यह संग्रह घरेलू स्त्री को मद्देनजर रखकर लिखी गई कविताओं का संकलन है। इसमें एक ओर जहाँ नितांत घरेलू स्त्री के जीवन, उसकी अनुभूतियों, संवेदनाओं, आशाओं-आकांक्षाओं के साथ ही उसके हताश होते मन, उसकी निराशाओं और पीड़ा के दर्शन किये जा सकते हैं वहाँ दूसरी

ओर समाज में स्त्री जाति की स्थिति के प्रति उसके मन में उठते असंतोष, खीझ और विद्रोह के स्वर भी लक्षित होते हैं।

स्त्री विमर्श या स्त्री चेतना की बात हो तो फ्रांस की महान स्त्रीवादी लेखिका सिमोन द बोउवा का नाम आना स्वाभाविक है। उन्होंने कहा है –“स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।”² दरअसल, शालीनता और मान-मर्यादा के नाम पर स्त्री के जीवन को जिन नियम-कायदों में बाँध दिया जाता है वह उसके स्वतंत्र जीवन जीने के अधिकार में मानों संध लगा देते हैं। खुलकर हंसने-दृबोलने ही नहीं बल्कि क्रोध करने के लिए भी उसे मर्यादा पालन नहीं भूलने की हिदायतें दे दी जाती हैं। पितृसत्तात्मक समाज की दृष्टि में अब्बल तो स्त्री को गुस्सा ही नहीं आना चाहिए और यदि आता भी है तो एक निश्चित दायरे के भीतर ही उसे रहना चाहिए अन्यथा वह सभ्य नहीं कहलाएगी। ममता कालिया जी इस स्थिति पर प्रश्नचिह्न लगाती हुई कहती हैं –“लोग कहते हैं/ मैं अपना गुस्सा कम करूँ/समझदार औरतों की तरह सँहूँ और चुप रहूँ/ गुस्सा कैसे कम किया जाता है? क्या यह चाट के ऊपर पड़ने वाला मसाला है या रेडियो का बटन? जिसे कभी भी कर दो ज्यादा या कम/ यह तो मेरे अन्दर की आग है /एक खौलता कढ़ाह, मेरा दिमाग है।”³ इस सन्दर्भ में क्षमा शर्मा का कथन दृष्टव्य है कि “चूँकि सारे विधान, सारी संहिताएँ, सारे नियम, धर्म, कानून पुरुषों ने रचे हैं इसलिए हर कानून, हर रीति-रिवाज और परंपरा का पलड़ा उनके पक्ष में झुका हुआ है।”⁴

प्रारंभ से ही स्त्री के इर्द-गिर्द पितृ सत्तात्मक समाज द्वारा ऐसा माहौल ईजाद कर दिया जाता है जिससे वह पुरुष को अपने जीवन का सरताज मानने लगेद्य परिणाम यह होता है कि अपना वजूद भुला कर वह पुरुष की छत्र छाया में ही स्वयं को सुरक्षित मानने लगती है।

साथ ही प्रारंभ से लेकर उसके परिपक्व होने तक उसके मस्तिष्क में ठूस ठूँस कर यह बैठा दिया जाता है कि उसे सदैव परिवार, पति, बच्चों, बुजुर्गों के लिए त्याग, क्षमा, उदारता जैसे गुणों को सर्वोपरि रखना चाहिए और इसी में उसके जीवन की सार्थकता है। इस विषय में प्रसिद्ध साहित्यकार तसलीमा नसरीन का मत उद्धृत करना चाहूँगी कि “स्त्री को डरना और लज्जालु होना पुरुष –प्रधान समाज ने सिखाया है, क्योंकि भयभीत और लज्जालु रहने पर पुरुषों को उस पर अधिकार जताने में सुविधा होती है।”⁵ किन्तु वक्त के साथ, धीरे-धीरे ही सही, परिस्थिति ने करवट लेना शुरू किया और सदियों से रुढ़िवादी संस्कारों में जकड़ दी गई औरत के प्रश्नाकुल मन ने अपने स्व से साक्षात्कार करना आरम्भ किया। एक टीस के भाव से भर उठती है वह, जब अपने जीवन के उन पहलुओं पर विचार करती है जो उसने अपने घर-परिवार, पति-बच्चों के लिए न्यौछावर किये और किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता। इस पितृ सत्तात्मक समाज द्वारा जब इसे ही उसका परम सौभाग्य बता दिया गया और इसी में उसके जीवन की सार्थकता परिभाषित कर दी गई तो अब वह पूछती है कि “इस घर में /एक सर्वहारा का जीवन जीते हुए / मैंने परिश्रम को ही माना पारिश्रमिक /तुम मेरी जगह होते /क्या करते सातों दिन श्रम/सुबह शाम के अनवरत क्रम /बिना अवकाश /बिना वेतन /क्या जी लेते तुम ऐसे /कि हक होते मेरे/ना हक तुम्हारे /घर की किसी भी खिड़की, बालकनी पर/तुम्हारा चेहरा ना दिखता /सबकी चिड़ियों के अंत में /तुम्हारे लिए सिर्फ नमस्ते लिखा रहता /बोलो क्या तुम खुश रहते /कहते हुए कि यह तुम्हारा सौभाग्य है।”⁶ अपनी स्थिति को लेकर आज की प्रश्नातुर स्त्री की सजगता को ममता जी ने भली-भाँति चित्रित किया है।

आज की स्त्री अपने अस्तित्व को लेकर सजग होने लगी है। यही कारण है कि अब एक

असंतोष का भाव उसके मन में आने लगा हैं। अब और अधिक सहन करना उसे बर्दाश्त नहीं किन्तु क्या इतना आसान होता है ऐसा कर पाना? यही कारण है कि वह एक जद्दोजहद की जिन्दगी जीती है। आज की खांटी घरेलू औरत की इसी कशमकश की अभिव्यक्ति करते हुए ममता जी अपनी एक लम्बी कविता में कहती हैं –“ अन्दर से बाहर तक/प्रश्नों से भरी मैं/लगातार एक गुस्सा जीती हूँ/ बैठे बैठे लगता है/मेरे समूचे में/कहीं कहीं बर्फ जमती जा रही है/और कहीं/ आग एकट्टी हो गई है/मेरा एक हिस्सा गीदड़ बन गया है/और एक कटखना कुत्ता/अक्सर मेरे हाथ/ जो चांटा मारने के लिए सनसनाते हैं/ खुद ब खुद एक कलात्मक नमस्ते बन जाते हैं/ मैं सभ्य कहलाती हूँ/और फिर अपने इस पोचपने पर/ घर बैठ किचकिचाती हूँ/जब भी मैं बात करती हूँ/ मुझे शब्दों की शकल पर ऐतराज होता है/ क्योंकि/ मेरे अन्दर अब शब्द नहीं/ सिर्फ गुर्गाहट बची है/ बार- बार यही लगता है/ एक समूची संस्कृति/मेरे अन्दर परास्त पडी है।”⁷

स्त्री के गृहिणी रूप को हमेशा कमतर आंकने जाने के प्रति ममता कालिया जी असंतोष व्यक्त करती हैं। अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाली स्त्री को जब घर का मुखिया अंततः यह कहता है कि दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी पर वो नितान्त घरेलू स्त्री ही बनी रह गई तो उसे अपने वजूद के सामने प्रश्नचिह्न दिखना स्वाभाविक ही है। अत्यंत सधे हुए ढंग से विरोध प्रकट करते हुए अपनी लम्बी कविता के माध्यम से वह घरेलू स्त्री के मन की पीड़ा को उजागर करती है तथा समाज में उसके प्रति बराबरी के हक की मांग करती है। कुछ पंक्तियाँ देखिये—“पैंतीस साल मैंने घर चलाने की कोशिश की/ मेरा रिपोर्ट कार्ड कभी संतोषजनक नहीं रहा/अपनी तरफ से न कभी नागा की , न इतवार मांगा / इससे बहुत कम उपक्रम में मैं /अपनी बौद्धिक क्षमता सिद्ध कर लेती /तर्कशक्ति तराश कर

निर्णय कर लेती /पर मैंने यह सब नहीं किया/जीवन एक सरल रेखा में जिया/अब जब तुमने मुझे /खांटी घरेलू औरत के खिताब से दाग दिया है /मुझे क्या करना चाहिए! द्रोह की दुन्दुभि बजाने में /सचमुच विलम्ब हो गया / पर मेरी बेटियाँ पहचानती हैं मेरी गलतियाँ / . . . उनसे नहीं होगी भावुकता की भूल/वे बदल देंगी सारी व्यवस्था समूल/उनकी मांग है बराबर का हक /बराबर का नाम/बराबर की शिक्षा /बराबर का काम/वे मेरे सीमित सपनों में संशोधन लायेंगी /और मेरी चुप्पी को निर्भय उदबोधन में बदल देंगी।”⁸

वास्तव में स्त्री-स्वातंत्र्य का अहम् बिंदु उसे चयन का अधिकार प्राप्त होना है परन्तु स्त्री को हमेशा से अपने अधीन रखने का आदी हो चुका ये पुरुष वर्चस्ववादी समाज कभी सहन नहीं कर पाता कि उसके द्वारा निर्धारित तय दायरों के पार जाकर स्त्री कुछ सोचे-समझे, उसे निर्णय लेने की आज़ादी देना तो दूर की बात है। घर की चारदीवारी के भीतर तक ही स्त्री की दुनिया को समेट देने वाला ये समाज अन्य विषयों में उसके दखल को अनावश्यक मानता है। यही कारण है कि “ जिन सवालों पर सच्चाई से मुहँ खोला /उन पर बवाल मचा / जब जब लगाई चुप/ अच्छी औरत का खिताब मिला/. . . औरत का बोलना घर को नहीं भाता है/चुपचाप करते रहें उसके हाथ-पाँव काम/उसके शब्दकोश में हों बस दो शब्द/ ‘जी हाँ और ‘हाँ जी’ /तो खुश रहें बच्चे, बड़े और मांजी/आदर्श पत्नी सी वह घर में आसीन रहे/बाकी जगत से उदासीन रहे।”⁹ लेविस्त्रास ने सही कहा है कि “सत्ता चाहे सार्वजनिक हो या सामाजिक, वह हमेशा पुरुष के हाथों में रही। स्त्री हमेशा अलगाव में रही। उसे यदि पुरुष ने देवी का रूप दिया तो इतना ऊँचा उठा दिया, निरपेक्ष रूप से इतनी पूज्या बना दिया कि मानव जीवन उसे प्राप्य ही नहीं हो सका।”¹⁰ पर खांटी घरेलू औरत अब अपने महत्त्व को समझने लगी है और इसीलिए

चाहती है कि अब समाज भी उसकी भूमिका को स्वीकारे। स्वीकारे कि अपने घर-परिवार की बेल को अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों से सींच कर लहलहा देने वाली औरत की भूमिका नगण्य नहीं हो सकती। साथ ही वह चाहती है कि उसे देवी की संज्ञा से विभूषित कर- करके उस से हर वक्त त्याग, बलिदान आदि महानता की उम्मीद न की जाए और उसे एक साधारण मनुष्य की तरह समझा जाए जो गलतियां भी करता है, जिसकी इच्छाएँ- आकांक्षाएँ भी होती हैं और जो अपने लिए भी सोचता है। स्त्री चेतना से लबरेज इस प्रभावशाली कविता में स्त्री के अंतर्मन की आवाज़ सुनी जा सकती है; ये पंक्तियाँ देखिये –“समझ नहीं आता /जो चीज़ सबको बड़ी आसानी से मिल जाती है /मेरे लिए इतनी दुर्लभ क्यों है / क्या मैं कुछ कम मनुष्य हूँ/ या, वे कुछ ज्यादा। क्या मुझे हमेशा मोहलत की तरह मिलेगी जिन्दगी / या बख्शीश में /जाओ ,उनसे कह दो /मैं न कैदी हूँ न भिखारी / मेरा हक है एक समूची साबुत आज़ादी।”¹¹ अब उपेक्षित जीवन जीना मंजूर नहीं करती आज की स्त्री। अपने अस्तित्व की तलाश करती हुई अपने हक के लिए आवाज़ उठाना सीखने लगी है वह। अपनी इच्छाओं का और अधिक दमित करना अब उसे स्वीकार नहीं ,इसीलिए वह कहती है।” अब और नहीं सहेगी/खांटी घरेलू औरत/पिछली पांत में खड़ी नहीं रहेगी/जायेगी सिविल लाइंस/कटवा देगी यह लम्बी काली चोटी/नुचवा लेगी भंवे/ देह के सारे अवांछित बाल साफ़ करवा देगी/ले आएगी वह रैपिडेक्स इंग्लिश रीडर/नहीं पहनेगी वह अब मोटी हैंडलूम साड़ियाँ/सिलवा लेगी नये सलवार सूट/पर इस सबके लिए उसे चाहिए/एक साबूत दिन और कुछ रुपये/दोनों ही उसके पास कहाँ”¹² कविता की अंतिम तीन पंक्तियों में घरेलू स्त्री के जीवन की विडम्बना चरितार्थ हुई है। अब जबकि वह भी अपनी चाहतों के पंख फैलाकर इस दुनिया में उड़ान भरना चाहती है तो पाती है कि उसके पंखों को उड़ान की गति देने वाला

सहारा ही उपलब्ध नहीं है। लेकिन वह हार नहीं मानती और नयी ऊर्जा और नवीन शक्ति से अपने मंतव्य की ओर बढ़ती जाती है। महादेवी वर्मा के शब्दों में सच्चाई है कि “ भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण देय से जाग जायेगी, उस दिन उसकी गति को रोकना किसी के लिए संभव नहीं।”¹³ तसलीमा नसरिन के शब्दों में “ जिस दिन यह समाज स्त्री- शरीर का नहीं-स्त्री के अंग-प्रत्यंग का नहीं-स्त्री की मेधा और श्रम का मूल्य सीख जाएगा सिर्फ उस दिन स्त्री ‘मनुष्य’ के रूप में स्वीकृत होगी।”¹⁴

कुल मिलाकर ‘खांटी घरेलू औरत’ की अधिकांश कवितायें घरेलू स्त्री में आती चेतना का आहवाहन करती हैं और ममता जी ने अत्यंत प्रभावशाली शैली में स्त्री के अंतर्मन की हलचल ,उसके संघर्षमय जीवन, उसकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न , पुरुष वर्चस्ववादी समाज में उसकी स्थिति सब कुछ उजागर किए हैं।

सन्दर्भ

1. खांटी घरेलू औरत ,ममता कालिया ,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ,संस्करण 2012 ,पृष्ठ 20
2. स्त्री उपेक्षिता, अनुवाद (सिमोन द बोउवा, द सेकेंड सेक्स) अनुवादक: प्रभा खेतान, हिंदी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2002, पृष्ठ 2
3. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 15
4. स्त्रीवादी विमर्श :समाज और साहित्य , क्षमा शर्मा ,राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली,पृष्ठ 6 1
5. औरत के हक में ,तसलीमा नसरिन , वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली ,संस्करण 2007 ,पृष्ठ 1 20
6. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 42

7. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 40
8. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 62
9. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 18
10. स्त्री उपेक्षिता, अनुवाद (सिमोन द बोउवा, द सेकेंड सेक्स) अनुवादक: प्रभा खेतान, हिंदी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2008 , पृष्ठ 2
11. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 18
12. खांटी घरेलू औरत, पृष्ठ 18
13. शृंखला की कड़ियाँ , (अपनी बात) महादेवी वर्मा, लोकभारती
14. औरत के हक में ,तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली, संस्करण 2007 ,पृष्ठ 168